



Research Article

टोडारायसिंह की स्थापत्य कला एवं मूर्तिकला का कलात्मक अध्ययन

रामदेव मीणा ^{1*}, डॉ. शालिनी भारती

¹ शोधार्थी, चित्रकला विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा, कोटा विश्वविद्यालय, राजस्थान, भारत

² रिसर्च सुपरवाइजर, चित्रकला विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा, कोटा विश्वविद्यालय, राजस्थान, भारत

Corresponding Author: * रामदेव मीणा

DOI: <https://doi.org/10.5281/zenodo.19449166>

सारांश

राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत में टोडारायसिंह (जिला टोंक) एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक एवं कलात्मक केंद्र के रूप में स्थापित है। यहाँ की स्थापत्य कला एवं मूर्तिकला न केवल क्षेत्रीय शिल्प परंपराओं का प्रतिनिधित्व करती है, बल्कि भारतीय शिल्पशास्त्र, धार्मिक आस्थाओं तथा सामाजिक संरचना के विविध आयामों को भी अभिव्यक्त करती है। प्रस्तुत शोध-पत्र में टोडारायसिंह के मंदिरों, बावड़ियों, दुर्गों एवं अन्य स्थापत्य संरचनाओं का कलात्मक, शैलीगत एवं प्रतीकात्मक विश्लेषण किया गया है। साथ ही मूर्तिकला के आइकनोग्राफिक पक्ष, शिल्प तकनीक, सामग्री तथा सांस्कृतिक महत्व का भी अध्ययन किया गया है। यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि टोडारायसिंह की कला परंपरा भारतीय कला इतिहास में विशिष्ट स्थान रखती है।

Manuscript Information

- ISSN No: 2583-7397
- Received: 12-10-2025
- Accepted: 29-11-2025
- Published: 31-12-2025
- IJCRM:4(6); 2025: 709-712
- ©2025, All Rights Reserved
- Plagiarism Checked: Yes
- Peer Review Process: Yes

How to Cite this Article

रामदेव मीणा, डॉ. शालिनी भारती.
टोडारायसिंह की स्थापत्य कला एवं
मूर्तिकला का कलात्मक अध्ययन.
इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कंटेम्पररी
रिसर्च इन मल्टीडिसिप्लिनरी.
2025;4(6):: 709-712.

Access this Article Online



www.multiarticlesjournal.com

प्रमुख शब्द: टोडारायसिंह, स्थापत्य कला, मूर्तिकला, नागर शैली, बावड़ी, राजस्थान, शिल्पशास्त्र

परिचय

भारतीय उपमहाद्वीप की सांस्कृतिक चेतना का इतिहास उसकी पाषाण कलाओं में अंकित है। स्थापत्य और मूर्तिकला केवल ईंट, पत्थर या चूने का विन्यास नहीं हैं, बल्कि ये एक जीवंत सभ्यता के सामाजिक, धार्मिक और दार्शनिक उत्कर्ष के साक्ष्य हैं। राजस्थान, जिसे 'वीर प्रसूता' भूमि कहा जाता है, अपनी शौर्य गाथाओं के साथ-साथ अपनी

अद्वितीय शिल्प विरासत के लिए भी विश्व प्रसिद्ध है। इसी विरासत का एक अनमोल रत्न है—**टोडारायसिंह**।

टोंक जिले में स्थित टोडारायसिंह नगर अपनी भौगोलिक स्थिति और ऐतिहासिक महत्ता के कारण शोध का एक महत्वपूर्ण विषय है। अरावली की उपत्यकाओं में बसा यह नगर प्राचीन काल में 'तक्षकपुर' या 'टोडा' के नाम से विख्यात रहा है। यहाँ की स्थापत्य कला में जहाँ

एक ओर नागर शैली की शास्त्रीय शुद्धता दिखाई देती है, वहीं दूसरी ओर स्थानीय लोक-संवेदनाओं का पुट इसे विशिष्ट बनाता है। यहाँ के मंदिर केवल पूजा स्थल नहीं, बल्कि शिल्पशास्त्र के क्रियान्वयन के केंद्र रहे हैं। इसी प्रकार, यहाँ की बावड़ियाँ जल प्रबंधन और कलात्मक सौंदर्य के उस अद्भुत समन्वय को दर्शाती हैं, जो मरुस्थलीय संस्कृति की अनिवार्य आवश्यकता रही है।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य टोडारायसिंह की कलात्मक संपदा का न केवल प्रलेखन करना है, बल्कि इसके शैलीगत वैशिष्ट्य और प्रतीकात्मक अर्थों की गहराई तक पहुँचना है।

शोध विस्तार

प्रस्तुत शोध के अंतर्गत टोडारायसिंह की स्थापत्य कला एवं मूर्तिकला का बहुआयामी विश्लेषण किया गया है। इस अध्ययन में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, स्थापत्य संरचनाओं के विविध प्रकार, मूर्तिकला की शैलीगत विशेषताओं, शिल्प तकनीकों तथा प्रतीकात्मक अर्थों का क्रमबद्ध एवं सम्यक् विवेचन किया गया है। साथ ही, विभिन्न कला केंद्रों के तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से इस क्षेत्र की विशिष्ट कलात्मक पहचान को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार, यह अध्ययन टोडारायसिंह को एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक एवं कलात्मक केंद्र के रूप में स्थापित करता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

टोडारायसिंह का इतिहास राजनीतिक उथल-पुथल और कलात्मक संरक्षण की एक लंबी गाथा है। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार, यह क्षेत्र चौहान वंश के शक्तिशाली शासकों के प्रभाव में रहा। 12वीं शताब्दी के आसपास, जब उत्तर भारत में मंदिर निर्माण की कला अपने चरमोत्कर्ष पर थी, तब टोडारायसिंह एक प्रमुख कला केंद्र के रूप में उभरा।

- राजपूत संरक्षण:** स्थानीय शासकों जैसे रायसिंह सिसोदिया के काल में यहाँ बड़े पैमाने पर निर्माण कार्य हुए। उनके नाम पर ही इस स्थान का नाम 'टोडारायसिंह' पड़ा। इन शासकों ने न केवल दुर्गों का निर्माण करवाया, बल्कि विद्वानों और शिल्पकारों को आश्रय देकर मंदिरों और जलाशयों को कलात्मक रूप प्रदान किया।
- सांस्कृतिक समन्वय:** मध्यकाल में यहाँ शैव, वैष्णव और जैन मतों का प्रभाव समान रूप से देखा गया। यही कारण है कि यहाँ के शिल्प में 'समन्वयवादी दृष्टि' प्रमुखता से उभरती है।
- मुगल और स्थानीय शैली का मिलन:** 16वीं और 17वीं शताब्दी के दौरान, जब मुगल सत्ता का विस्तार हुआ, तो यहाँ के सैन्य स्थापत्य (किले और बुर्ज) पर मुगल प्रभाव भी दिखाई देने लगा, लेकिन मंदिरों और मूर्तिकला ने अपनी मौलिक राजस्थानी और शास्त्रीय पहचान को अक्षुण्ण रखा।

स्थापत्य कला का स्वरूप एवं तकनीकी विश्लेषण

टोडारायसिंह की स्थापत्य कला को तीन प्रमुख श्रेणियों में विभाजित कर अध्ययन किया जा सकता है: धार्मिक स्थापत्य (मंदिर), जल स्थापत्य (बावड़ियाँ) और सैन्य स्थापत्य (दुर्ग)।

मंदिर स्थापत्य: नागर शैली का चरमोत्कर्ष

यहाँ के मंदिर मुख्य रूप से मध्यकालीन भारतीय स्थापत्य की नागर शैली पर आधारित हैं। इन मंदिरों का विन्यास अत्यंत वैज्ञानिक और प्रतीकात्मक है।

- गर्भगृह और अंतराल:** मंदिरों का सबसे पवित्र भाग 'गर्भगृह' है, जहाँ मुख्य देवता की प्रतिमा स्थापित है। इसके सम्मुख 'अंतराल' की सूक्ष्म संरचना है जो भक्त को बाहरी दुनिया से अध्यात्म की ओर ले जाती है।
- मंडप एवं स्तंभ:** बीसलपुर मंदिर (गोकर्णेश्वर महादेव) और पीपाजी मंदिर के स्तंभों पर की गई नक्काशी विशेष ध्यान आकर्षित करती है। इन स्तंभों पर 'घट-पल्लव' (कलश और पत्तियाँ) और 'कीर्तिमुख' के अलंकरण भारतीय शिल्पशास्त्र के उच्च मानदंडों को दर्शाते हैं।
- शिखर विधान:** यहाँ के मंदिरों के ऊर्ध्वमुखी शिखर आकाश की ओर उठती मानवीय आकांक्षाओं के प्रतीक हैं। शिखरों पर 'आमलक' और 'कलश' का स्थापन ब्रह्मांडीय ऊर्जा के केंद्र के रूप में किया गया है।

जल स्थापत्य: हाड़ी रानी की बावड़ी

राजस्थान में बावड़ी निर्माण की कला जल संरक्षण के साथ-साथ सामाजिक संवाद का माध्यम रही है। टोडारायसिंह की हाड़ी रानी की बावड़ी स्थापत्य का एक बेजोड़ उदाहरण है।

- ज्यामितीय सौंदर्य:** इस बावड़ी की सीढ़ियों का विन्यास इस प्रकार है कि वे ऊपर से देखने पर एक जटिल और सुंदर ज्यामितीय प्रतिरूप बनाती हैं। यह संरचना केवल सौंदर्य के लिए नहीं, बल्कि भारी भीड़ के समय जल तक सुगम पहुँच के लिए भी है।
- बहु-स्तरीय संरचना:** बावड़ी के विभिन्न स्तरों पर बने छोटे कक्ष और बरामदे गर्मियों में शीतलता प्रदान करते थे, जो इसे एक 'सामुदायिक केंद्र' के रूप में स्थापित करते हैं।

सैन्य स्थापत्य: टोडा दुर्ग

टोडा दुर्ग का निर्माण सामरिक सुरक्षा को ध्यान में रखकर किया गया था।

- प्राचीर एवं बुर्ज:** दुर्ग की विशाल और चौड़ी दीवारें अभेद्यता का अहसास कराती हैं। यहाँ के बुर्जों की स्थिति इस प्रकार है कि वे पूरे नगर पर निगरानी रखने में सक्षम हैं।
- प्रवेश द्वार:** दुर्ग के विशाल द्वार न केवल सुरक्षा प्रदान करते हैं, बल्कि उन पर किए गए अलंकरण शासक की शक्ति और कला-प्रियता को भी व्यक्त करते हैं।

मूर्तिकला का गहन विश्लेषण

टोडारायसिंह की मूर्तिकला भारतीय पाषाण शिल्प की उस पराकाष्ठा का प्रतिनिधित्व करती है, जहाँ पत्थर केवल निर्माण की सामग्री नहीं रहता, बल्कि भावनाओं और आध्यात्मिकता का संवाहक बन जाता है। यहाँ प्राप्त प्रतिमाओं को मुख्य रूप से तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है: धार्मिक (देव प्रतिमाएँ), लौकिक (मानवीय आकृतियाँ) और आलंकारिक (प्रतीक)।

शैव एवं वैष्णव प्रतिमा विज्ञान

टोडारायसिंह के मंदिरों, विशेषकर बीसलपुर (गोकर्णेश्वर) और कल्याणराय मंदिर में शैव और वैष्णव मतों का अद्भुत संगम दिखाई देता है।

- **शिव की विविध मुद्राएँ:** यहाँ शिव के 'सौम्य' और 'रौद्र' दोनों रूपों का अंकन मिलता है। उमा-महेश्वर की आलिंगनबद्ध प्रतिमाएँ वैवाहिक सामंजस्य और प्रेम का प्रतीक हैं। इन मूर्तियों में शिव के जटा-मुकुट, चंद्र-कला और नाग-अलंकरण को अत्यंत सूक्ष्मता से उकेरा गया है। इसके विपरीत, नटराज रूप में शिव की गतिशीलता और तांडव की मुद्रा ब्रह्मांडीय सृजन और विनाश के चक्र को दर्शाती है।
- **विष्णु के दशावतार:** वैष्णव मंदिरों की भित्तियों पर विष्णु के अवतारों—जैसे वराह, नृसिंह और वामन का अंकन मिलता है। वराह अवतार की प्रतिमा में पृथ्वी को दाँतों पर उठाए हुए जो 'शक्ति' और 'संकल्प' का भाव है, वह शिल्पकार की उच्च कल्पनाशीलता का प्रमाण है।
- **गणेश एवं कार्तिकेय:** देवाल्यों के प्रवेश द्वारों और रथिकाओं में गणेश की 'लम्बोदर' और 'विघ्नहर्ता' रूप की प्रतिमाएँ शास्त्रीय नियमों (तालमान) के अनुसार निर्मित हैं।

जैन मूर्तिकला: शांति और कैवल्य का भाव

टोडारायसिंह में जैन धर्म का प्रभाव भी ऐतिहासिक रूप से प्रबल रहा है। यहाँ की जैन प्रतिमाओं में दिगंबर परंपरा की स्पष्ट झलक मिलती है।

- **कायोत्सर्ग एवं पद्मासन मुद्रा:** तीर्थकरों की मूर्तियाँ मुख्य रूप से ध्यानस्थ मुद्रा में हैं। इन मूर्तियों के चेहरों पर जो 'नासाग्र दृष्टि' और 'प्रशांत भाव' है, वह दर्शक को आध्यात्मिक शांति की ओर प्रेरित करता है।
- **लांछन एवं यक्ष-यक्षिणी:** प्रत्येक तीर्थकर की पहचान उनके विशिष्ट 'लांछन' (चिह्न) और उनके साथ अंकित यक्ष-यक्षिणियों (जैसे चक्रेश्वरी या अंबिका) से होती है। इन मूर्तियों की बनावट में 'सममिति' का विशेष ध्यान रखा गया है, जो जैन दर्शन के 'समभाव' को प्रकट करती है।

शैलीगत एवं तुलनात्मक विश्लेषण

टोडारायसिंह की कला को समझने के लिए इसके विभिन्न केंद्रों की तुलना अनिवार्य है:

तुलना का आधार	पीपाजी मंदिर	बीसलपुर (गोकर्णेश्वर)	कल्याणराय / लक्ष्मी नारायण
कलात्मक शैली	शास्त्रीय और सरल	परिपक्व और अलंकृत	मिश्रित राजस्थानी शैली
नक्काशी का स्तर	रेखाओं में स्पष्टता, कम जटिलता	अत्यंत सूक्ष्म और घनी नक्काशी	संतुलित और प्रतीकात्मक
भाव अभिव्यक्ति	भक्ति और समर्पण प्रधान	राजसी भव्यता और सौंदर्य प्रधान	पारंपरिक एवं शांत भाव

लौकिक एवं आलंकारिक अंकन

मंदिरों की बाहरी दीवारों (जंघा भाग) पर केवल देवता ही नहीं, बल्कि तत्कालीन समाज और प्रकृति का भी जीवंत चित्रण है।

- **सुरा-सुंदरियाँ और अप्सराएँ:** पीपाजी और बीसलपुर मंदिर की दीवारों पर विभिन्न मुद्राओं में अप्सराओं का अंकन है। कोई दर्पण देख रही है, कोई पैर से काँटा निकाल रही है, तो कोई वाद्य यंत्र बजा रही है। इन मूर्तियों में 'त्रिभंग मुद्रा' (शरीर के तीन झुकाव) का प्रयोग शरीर के सौंदर्य और लचक को उभारने के लिए किया गया है।
- **मिथुन आकृतियाँ:** भारतीय कला परंपरा के अनुरूप, यहाँ भी सृष्टि की निरंतरता और दांपत्य सुख के प्रतीक रूप में मिथुन आकृतियों का मर्यादित अंकन मिलता है।
- **पशु-पक्षी एवं लता-वल्ली:** मूर्तियों के चारों ओर 'कल्पलता', 'हंस', 'मयूर' और 'गज' (हाथी) की कतारें बनी हैं। हाथी को 'शक्ति' और 'ऐश्वर्य' का प्रतीक माना गया है, जबकि हंस 'विवेक' का।
- **बीसलपुर बनाम अन्य:** बीसलपुर की मूर्तियाँ अपनी 'आयतन' और 'गति' के कारण टोडारायसिंह की अन्य संरचनाओं से अधिक श्रेष्ठ प्रतीत होती हैं। यहाँ की मूर्तियों में जो 'छवि' और 'कांति' है, वह चंदेली या सोलंकी कला के समकक्ष ठहरती है।
- **स्थानीय प्रभाव:** टोडारायसिंह की मूर्तियों में एक विशेष 'देसीपन' है। यहाँ के स्त्री पात्रों के आभूषण और वस्त्र (जैसे घाघरा-ओढ़नी के सूक्ष्म पैटर्न) तत्कालीन राजस्थानी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं।

शिल्प तकनीक एवं प्रयुक्त सामग्री

शिल्पकारों की दक्षता उनके द्वारा चुनी गई सामग्री और उपकरणों पर निर्भर करती है।

- **पाषाण चयन:** यहाँ मुख्य रूप से स्थानीय बलुआ पत्थर का उपयोग हुआ है। यह पत्थर न केवल दीर्घजीवी है, बल्कि इस पर बारीक नक्काशी करना भी सुगम है। समय के साथ इस पत्थर पर जो 'पेटिना' (प्राकृतिक चमक) आई है, वह इसकी प्राचीनता को और गरिमा प्रदान करती है।
- **उपकरण:** छेनी और हथौड़ी के माध्यम से पत्थरों को तराश कर उनमें 'पारदर्शिता' का भ्रम पैदा करना (जैसे मूर्तियों के दुपट्टों की लहरें) शिल्पकारों के असाधारण हस्तकौशल का प्रमाण है।
- **अनुपात:** 'मानसार' जैसे ग्रंथों के आधार पर मूर्तियों का निर्माण किया गया है, जहाँ सिर से पैर तक के प्रत्येक अंग का माप निश्चित था।

प्रतीकात्मकता एवं सांस्कृतिक महत्त्व

टोडारायसिंह की स्थापत्य और मूर्तिकला केवल पाषाण खंडों का समूह नहीं है, बल्कि यह एक 'मौन भाषा' है जो मध्यकालीन राजस्थान के दर्शन को अभिव्यक्त करती है।

- **मंदिर: ब्रह्मांड का सूक्ष्म रूप:** नागर शैली के मंदिरों का आधार पृथ्वी का प्रतीक है, जबकि उसका शिखर स्वर्ग की ओर जाने वाले मार्ग का। गर्भगृह का अंधकार 'अज्ञान' से 'ज्ञान' (ईश्वर) की ओर ले जाने की यात्रा को दर्शाता है।

- **बावड़ी: जीवन और शुद्धि का प्रतीक:** राजस्थान के मरुस्थलीय परिवेश में जल 'अमृत' के समान है। हाड़ी रानी की बावड़ी की सीढ़ियाँ जीवन के उतार-चढ़ाव की प्रतीक हैं। जल के समीप बने छोटे आले (Niches) और देव-प्रतिमाएँ यह दर्शाती हैं कि यहाँ जल का संचयन केवल भौतिक आवश्यकता नहीं, बल्कि एक पवित्र धार्मिक अनुष्ठान भी था।
- **मूर्तियों के आयुध:** प्रतिमाओं के हाथों में पकड़े गए आयुध (शंख, चक्र, गदा, त्रिशूल) केवल शस्त्र नहीं हैं, बल्कि वे मानवीय वृत्तियों—जैसे चेतना, समय, अहंकार का दमन और शक्ति के प्रतीक हैं।

केस स्टडी: हाड़ी रानी की बावड़ी और बीसलपुर का समन्वय

टोडारायसिंह का कलात्मक वैभव इन दो संरचनाओं में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचता है। जहाँ बीसलपुर का मंदिर 'आकाशमुखी' है, वहीं बावड़ी 'पातालमुखी' है। यह विपरीत दिशाओं का समन्वय भारतीय दर्शन के 'आकाश' और 'पाताल' (शून्य और पूर्ण) के संतुलन को दर्शाता है।

समकालीन प्रासंगिकता एवं चुनौतियाँ

आज के वैश्विक युग में टोडारायसिंह की यह धरोहर न केवल इतिहास का हिस्सा है, बल्कि यह भविष्य के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

1. **पर्यटन और अर्थव्यवस्था:** टोडारायसिंह की स्थापत्य कला इसे एक प्रमुख 'हेरिटेज डेस्टिनेशन' के रूप में स्थापित करती है। यदि इसका उचित प्रचार-प्रसार हो, तो यह स्थानीय रोजगार का बड़ा स्रोत बन सकता है।
2. **पर्यावरण और जल प्रबंधन:** प्राचीन बावड़ियों की तकनीक आज के 'वाटर हार्वेस्टिंग' के लिए एक मॉडल का काम कर सकती है। आधुनिक इंजीनियर इन संरचनाओं से सीख सकते हैं कि कैसे न्यूनतम संसाधनों में दीर्घकालिक जल प्रबंधन किया जाए।
3. **अकादमिक और शोध:** यह क्षेत्र भारतीय शिल्पशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए एक 'खुली प्रयोगशाला' है, जहाँ नागर शैली के सूक्ष्म परिवर्तनों का अध्ययन किया जा सकता है।

संरक्षण की आवश्यकता

- **प्राकृतिक क्षरण:** वायु और वर्षा के कारण बलुआ पत्थर की ऊपरी सतह का क्षरण हो रहा है।
- **मानवीय हस्तक्षेप:** अवैध अतिक्रमण और पर्यटन के दौरान मूर्तियों को स्पर्श करने से उनके विवरण धुंधले हो रहे हैं।
- **जागरूकता का अभाव:** स्थानीय स्तर पर इन धरोहरों के ऐतिहासिक महत्व के प्रति और अधिक चेतना जाग्रत करने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

समग्र अध्ययन और विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि टोडारायसिंह की स्थापत्य कला एवं मूर्तिकला राजस्थान की सांस्कृतिक धरोहर का एक देदीप्यमान अध्याय है। यहाँ की कला में जो शास्त्रीयता और स्थानीयता का संगम है, वह विरल है।

पीपाजी मंदिर की सादगी से लेकर बीसलपुर की भव्यता और हाड़ी रानी की बावड़ी की ज्यामितीय जटिलता तक—प्रत्येक पत्थर एक कहानी कहता है। यह शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि टोडारायसिंह केवल एक भौगोलिक स्थान नहीं, बल्कि 'पाषाण में उत्कीर्ण कविता' है। इन धरोहरों का संरक्षण न केवल पूर्वजों के प्रति सम्मान है, बल्कि यह हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिए अपनी जड़ों से जुड़े रहने का एकमात्र मार्ग है।

संदर्भ ग्रंथ

1. शर्मा जी. राजस्थान का इतिहास. आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी; 2015।
2. अग्रवाल वश. भारतीय कला. वाराणसी: पृथ्वी प्रकाशन; 1965।
3. मिश्र रत्न. राजस्थान के मंदिर. जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी; 1998।
4. भटनागर वस. राजस्थान की कला और संस्कृति. जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी; 2002।
5. चौधरी क. राजस्थान की स्थापत्य कला. जयपुर: पंचशील प्रकाशन; 2010।
6. सिंह ह. राजस्थान की मूर्तिकला परंपरा. जयपुर: साहित्यागार; 2012।
7. जैन कच. जैन कला एवं स्थापत्य (अनुवादित). दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास; 2001।
8. शास्त्री केडी. भारतीय शिल्पशास्त्र. दिल्ली: विद्या प्रकाशन; 2005।
9. राजस्थान सरकार. राजस्थान जिला गजेटियर: टोंक जिला. जयपुर: राजस्थान सरकार प्रकाशन; 1996।
10. पुरातत्व विभाग, राजस्थान. विभिन्न रिपोर्ट्स एवं सर्वेक्षण. राजस्थान: राजस्थान सरकार; 2008।

Creative Commons (CC) License

This article is an open-access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.